# हिंदी कविता व पर्यावरण विमर्श

मनुष्य और प्रकृति का घनिष्ठ संबंध है। वह पूरी तरह प्रकृति से जुड़ा है। प्रकृति के कारण ही मनुष्य जिंदा है इसलिए प्रकृति प्राणदायिनी है। सभी लोग प्रकृति की ओर आकर्षित होते हैं। साहित्यकार भी इससे अछूती नहीं रह पाए हैं। भारतीय साहित्य में प्रकृति का उपदेशिका रूप प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। रचनाकार तो हमेशा ही प्रकृति प्रेमी रहे हैं। प्रकृति उनके सुख-दुख की सोच रहे हैं। परंतु आज हम अपने निजी स्वार्थों के चलते प्रकृति को नष्ट करते जा रहे हैं, जिसके परिणाम स्वरूप पर्यावरण प्रदूषण आज की अत्यंत ज्वलंत समस्या बन गई है।

पर्यावरण सुरक्षा का महत्व वैदिक साहित्य में ही नहीं हिंदी साहित्य के आदिकाल एवं मध्यकाल में भी अंकित है। जहाँ पेड़ पौधों और नदियों व स्वरों की उपासना पर प्रकाश डाला गया है। जेल की सुरक्षा हर हाल में करनी चाहिए क्योंकि वह उन पांच तत्वों में से एक है, जिनके कारण सृष्टि का निर्माण हुआ है। इसे कबीरदास भी स्वीकार करते हैं -

''जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत्व कहयोगीयानी।"

छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने भी कामायनी में इस तथ्य को स्वीकारते हुए कहा है -

" नीचे जला था, ऊपर हिम था
एक तरल था, एक सघन।
एक तत्त्व की प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन।"

सुमित्रानंदन पंत प्रकृति के सुकुमार कवि है। बाल्यकाल से ही प्रकृति प्रेरणा की अजय स्त्रोत रही है। पंतजी ने 'परिवर्तन' कविता में प्रकृति के माध्यम से जीवन की नश्वरता व क्षणभंगुरता का उपदेश दिया है -

" आज पावस नद के उद्गार काल के बनते चिन्ह कराल।
प्रातः का सोने का संसार, जला देती संध्या की ज्वाल "

रघुवीर सहाय ने प्रकृति और पर्यावरण को गहरी एकता के साथ अपने काव्य में बखूबी चित्रित किया है। इनकी कविताओं में पर्यावरण संबंधी चिंताएं निहित है। कवि को यह चिंता मथती रहती है की पहाड़, जंगल मिट्टी जैसे घटते नैसर्गिक संसाधनों के कारण प्रकृति केवल किताबों या स्मृति मात्र बनकर न रह जाय -

" वह पहाड़, जंगल, मिट्टी के मैदान हरे
छोटे हो गए हैं जो इतिहास में बड़े देश के प्रमाण थे।
इनकी विशालता का कोई गुणगान
अब सुनाई नहीं पड़ता।"

प्राचीन एवं मध्यकालीन वह छायावाद तक जहाँ हमें प्राकृतिक सौंदर्य व उनके अमूर्त रूप के दर्शन हुए वही समकालीन हिंदी कविता तक आते-आते प्रकृति के संरक्षण के प्रति चिंता व जागरूकता दिखलाई पड़ती है क्योंकि प्रकृति का दोहन बड़े पैमाने पर हो चुका है और अनवरत हो रहा है। सामाजिक सरोकार से जुड़े भवानी प्रसाद मिश्र आज पेड़, पौधे की स्थिति का वर्णन इस प्रकार करते हैं -

" कहीं नहीं बचे हरे वृक्ष। न झील सागर बचे हैं न नदियां
पहाड़ उदास है और झरने लगभग चुप
आंखों में वीरता है अँधेरा धूप।"

जल जंगल और जमीन से बनते स्वस्थ पर्यावरण को भूमंडलीकरण के फलस्वरूप बढ़ते औद्योगिकरण ने तहस-नहस कर दिया है। औद्योगिकरण पूंजीवादी व्यवस्था की मजबूरी है। ज्यादा से ज्यादा मुनाफा किसी भी तरीके से कमाना ही इसका मूल मंत्र होता है। आपस में लालची प्रतियोगिता एवं मुनाफे की लालसा के कारण हमारे देश की धरती की प्राकृतिक संपदा लूटी जाती है। ऐसे विकृत माहौल में वे प्रकृति के महत्व का गाना गाते हैं -

" तुम्हें जानना है कि गेहूँ न गोदाम में पैदा होता है
न कारखानों में
गेहूँ
लोहा, प्लास्टिक और कागज की लुगदी से नहीं बन सकता। "

जब हम इतिहास की ओर मुड़कर देखते हैं तो ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में वसंत ऋतु का महत्व अधिक था। वसंत के प्रारंभ में वसंतोत्सव, मदनोत्सव, आनंद, उत्साह के साथ मनाया

जाता था। पेड़ों के प्रति आत्मीयता की एवं संवेदना की पहचान किशोरीलाल व्यास की जंगलों को गाने दो कविता संग्रह में हुई है -

" जंगलों को गाने दो
कि जंगलों से जल है,
जल से ही जीवन है, रस है, अमृत है।
भू-संरक्षण है, उपजाऊ मिट्टी है
मिट्टी का गीत है, संगीत है
प्राणवायु का अक्षय कोश, प्रवाह सतत
निसर्ग-चक्र का संचालन है
अनगिनत प्राणियों का संरक्षण है
.... जंगल को गाने दो .....

केवल पेड़ों की ही नहीं नदियों की स्थिति भी बदतर है। कहीं नदी सूखने की समस्या तो कहीं नदी प्रदूषित होने की। नदिया हमारी संस्कृति की धरोहर है जिन पर हमारा जीवन टिका है, या जो चीजें हमारे जीवन का आधार है आज वही खो रहे हैं। 'नदी जो खो गई' नामक कविता में निर्मला गर्ग सरस्वती नदी की याद दिलाते हुए कहती है -

" सरस्वती तुम चली गई
रह गई रेत
क्या तुम वाकई थी?
सूखे खेत भला कुछ भी
कैसे संजो पाएंगे
तुम्हारा पानी उनके लिए जीवनद्र वह था।

घास और मिट्टी का संगम जो हमें मुक्ति दिलाता था, हमारे मन को विस्तार देता था, आज दूषित होती जा रही हैं। इसे शुभ संकेत तो नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति स्वार्थ से इतना भर चुका है वह अपने फायदे के लिए बेजुबान पृथ्वी को प्रदूषित कर रहा है। इस पर कवियत्री ज्योति चावला प्रकाश डाल रहे हैं।

" घरों की इमारते जितनी ऊंची होती जा रही है
उतने ही छोटे होते जा रहे हैं उनके दिल
और इन छोटे दिलों में अब नहीं अट पाता

वह विशाल जामुन का पेड़।"

कुछ विद्वान चाहते हैं कि मानव अपनी अद्भुत शक्ति का प्रयोग सावधान होकर करें। किंतु अधिकांश ऐसे हैं जो विज्ञान की बढ़ती विनाशक शक्ति पर किसी भी प्रकार का अंकुश लगाना नहीं चाहते। कवि मानव को चेताना चाहते हैं कि यदि उसने इस पाशविक शक्ति का नित-प्रति बढ़ता व्यापार रोकने में असमर्थता दिखाई दे तो एक दिन यह धरती रसातल को पहुंच जाएगी।

" दे चुका ज्ञान-विज्ञान तुम्हें चेतावनियां
हो रही रसायन सृष्टि, कुछ है गर्म वायुमंडल
पृथ्वी का वातावरण आचरण
विषम हो जाता है
है बदल रही ऋतुएँ सारी
जल धातु पाषाण द्रव्य
सागर, हीम, मेघ, वनस्पतियां
जब जीव कोष भू-अंतर तक
रेडियो रश्मियों से सक्रिय होते जाते
यह मनमानी यदि नहीं रुकी
तो पृथ्वी तापग्रस्त होगी
मिट जायेगा जीवन का क्रम इस धरती से ।"

प्राकृतिक संपदा मनुष्य जीवन के लिए वरदान है परंतु मानव प्रकृति पर अनियंत्रित हस्तक्षेप कर रहा है जिससे प्रकृतिक संपदा का शोषण बढ़ रहा है। जल-थल संसाधनों के अवैज्ञानिक प्रबंधन से समस्त जीव सृष्टि खतरे में है। ज्ञानेद्रपति की अनेकों कविताओं के केंद्र में पर्यावरणीय चिंता है। उनकी कविता पर्यावरण ह्रास और प्रदूषण को चित्रित तो करती ही है साथ ही भविष्यकाल में सुदृढ़ पर्यावरण के लिए आवश्यक उपाययोजनाओं की ओर भी संकेत करती है।

ज्ञानेद्रपति अपनी **नदी और साबुन** कविता की सहायता से हमारा ध्यान प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की ओर आकर्षित करते है। नदी को दुबली और मैली कुचली देखकर वे चिंतित होते है। इस कविता में साबुन की टिकिया औदोगिक पूंजीवाद की बिटियाँ है। साबुन के

इस्तमाल से पानी के पोषक तत्त्वों का अंत होता है। अन्य कोई भी जीव नदी का दुरुपयोग नहीं करते पर मानव स्वार्थी बनकर नदी का सत्यानाश करता है। मानव ने अपनी सुख-सुविधाएं बढ़ाने के लिए कई कारखाने बनाए। उनका विषैला जल नदी को प्रदूषित करता है। गंगा का उदय हिमालय से होता है। हिमालय एक सजग संरक्षक के रूप में है। इतने सजग संरक्षक होते हुए भी नदी एक छोटीसी नदी के सामने हार मान लेती है। उन्ही के शब्दों में -

"एक नीली साबुन-बट्टी
वह एक बहुराष्ट्रीय कंपनी का बहुप्रचलित साबुन है।
दुखियारी महतारी है गंगा
उसका जी काँपता है डर से उसकी प्रतिद्वंद्वी हथेली - भर की
वह जो साबुन की टिकिया है
इजारेदार पूँजीवाद की बिटिया है।

इस प्रकार हम कह सकते है हिन्दी कवियों ने पर्यावरण संतुलन और बिगाड़ के संदर्भ में अपने काव्य के माध्यम से जन जागृति करने का सफल प्रयास किया है।